International Journal of Applied Research 2022; 8(7): 120-123

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2022; 8(7): 120-123
www.allresearchjournal.com
Received: 02-05-2022
Accepted: 09-06-2022

मारुति शुक्ला
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, एस0जी0जी0पी0जी0 कॉलेज, जोगिया, घुघली, महराजगंज, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
मारुति शुक्ला
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, एस0जी0जी0पी0जी0 कॉलेज, जोगिया, घुघली, महराजगंज, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रेमचंद और पत्रकारिता : समसामयिक समीक्षा

मारुति शुक्ला

सारांश
इस बात से बिल्कुल भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि आज का यह समय एक ऐसा समय है जबकि हमारे आदर्श, परंपराएँ सभी कुछ धीरे–धीरे समाप्ति की ओर जा रहे हैं। यह रोग समाज रूपी शरीर में बुरी तरह से व्याप्त हो चुका है तो फिर पत्रकारिता इस रोग की चपेट में आने से अछूती कैसे रह सकती है। पत्रकारिता भी आज अपने उच्च आदर्शों और मूल्यों से विरत होती जा रही है। यहाँ पत्रकारिता का संबंध मुख्य रूप से प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से है। सामाजिक माध्यम जिन्हें हम सोशल मीडिया के नाम से जानते हैं, को इस सीमा से दूर रखा जाना चाहिये। जहाँ एक और टी0वी0 पत्रकारिता गोदी मीडिया के रूप में कुख्यात हो रही है वहीं समाचार–पत्रों का माध्यम भी उपरलिखित परिपाटी का ही अनुसरण करता हुआ विभिन्न खेमों में खड़ा दिखाई दे रहा है। इतना मात्र ही नहीं बाजार का दबाव भी जनता के प्रति पत्रकारिता के उत्तरदायित्व पर प्रहार करता हुआ उसे भोथरा करता जा रहा है। निश्चित रूप से आज हमारे वे आदर्श और मूल्य जो औपनिवेशिक शासन काल अथवा हमारी पराधीनता के समय में भारतीय मनीषियों ने पत्रकारिता के संदर्भ में इतनी विपरीत परिस्थितियों में भी सृजित और अर्जित किये थे, स्वप्न मात्र लगते हैं। वे आदर्श और मूल्य जो पत्रकारिता को लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। प्रेमचंद जागरण पत्र निकालने के एक साल के बाद बालक का रूपक गढ़ते हैं। एक साल का जागरण भी था और हमारी शुरूआती बालक रूपी पत्रकारिता का रूपक भी था। वर्तमान दौर में, शैशव कालीन पत्रकारिता का वह स्वरूप जो आज भी हमारे लिए श्रेष्ठ और अनुकरणीय है। प्रेमचंद और उनकी पत्रकारिता का इस शोधपत्र में विचार किया गया है।

कूटशब्द : पत्रकारिता, प्रेमचंद जागरण पत्र, लोकतंत्र, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, औपनिवेशिक

प्रस्तावना
मुंशी प्रेमचंद जी जागरण के 22 अगस्त, 1932 के अंक के संपादकीय में लिखते हैं, ''दुनिया हमें इसका बाप ना कहे–बाप कहलाने का गर्व किसे नहीं होता–लेकिन कम से कम इतना तो स्वीकार करेगी ही कि हमने इसे समाज का एक उपयोगी व्यक्ति बना दिया। हम तो सदैव महान आदर्श अपने सामने रखेंगे। बालक को निर्भीक, सत्यवादी, परिश्रमी, स्वस्थ, आचारदान, विचारशील बनाने का प्रयत्न करेंगे। वह वितंडावादी नहीं, सत्य का पुजारी होगा, चाहे उसे सत्य को स्वीकार करने में कितना ही अपमान हो। वह अप्रिय सत्य कहने से कभी न चुकेगा। वह केवल दूसरों के दोष न देखेगा, बल्कि अपने दोषों को स्वीकार करेगा.... वह निर्भीक होगा पर दुस्साहसी नहीं। वह सत्यवादी होगा, सत्य से जौ भर न टलेगा, पर पक्षपात से अपना दामन बचाएगा।'' स्पष्ट दिखाई देता है कि आज पत्रकारिता या तो सत्ता के पक्ष में अथवा उसके विपक्षी खेमे में अघोषित रूप से खड़ी है और इसी कारण उस पर लगातार प्रश्न–प्रति प्रश्नों का भी दबाव पड़ रहा है। ऐसे समय में प्रेमचंद जी की निम्नलिखित पंक्तियाँ आदर्श पत्रकारिता के लिए निबिड़ अंधकार में मानों मार्ग प्रशस्त करने वाली आकाशीय विद्युत की तरह ही हैं। ''वह जिस दृढ़ता से न्याय का पक्ष लेगा उतनी ही दृढ़ता से अन्यथ का विरोध करेगा, चाहे वह राजा की आरे से हो, समाज की ओर से अथवा धर्म की ओर से। वह सबलों का हितैषी होगा पर निर्बलों पर उनके जुल्म को सहन न कर सकेगा। समाज का दुखी और दुर्बल अंश उसे सदा अपनी वकालत करते हुए पाएगा।'' अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए वे पत्रकारिता के उस पक्ष के महत्व को रेखांकित करते हैं जो मनुष्य को और संवेदनशील बनाए, तरल और जीवंत बनाए।
हिंदी साहित्य के इतिहास की बात की जाय तो इस के मंच पर बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में मुंशी प्रेमचंद जैसे एक सशक्त रचनाकार का आगमन हुआ जिसको 'कलम का सिपाही', 'उपन्यास सम्राट', 'किसानों का रचनाकार' आदि विभिन्न उपाधियों से महिमामंडित किया गया और ये मात्र उपाधियाँ नहीं वरन् उनके व्यक्तित्व की सटीक व्याख्या थीं। उन्होंने अपने समय के सामाजिक जीवन को नई ऊर्जा, नई दिशा, नई गति देकर एक निर्माता नवयुगीन साहित्यकार का स्थान प्राप्त किया। प्रेमचंद जी एक ओर जहाँ कथा सम्राट के रूप में साहित्य जगत में लोकप्रिय और आदरणीय थे वहीं दूसरी ओर वे अपने लेखन के माध्यम से समसामयिक सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को भी

सामने रख रहे थे। स्वाधीनता संघर्ष में उन्होंने अपने लेखों के माध्यम से समुचित योगदान दिया। इसलिए वे 'कलम का सिपाही' की उपाधि की विभूषित हुए। अपनी कहानियों और अन्य लेखों के माध्यम से उन्होंने पराधीन भारत की उस दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है जिसमें गरीब कृषक वर्ग और मजदूर सामंतवाद, पूंजीवाद और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के तिहरे शोषण चक्र में बुरी तरह पिस रहा था। प्रेमचंद जी ने न केवल इन उपर्युक्त तीनों वादों की जनता की दृष्टि से आलोचना की बल्कि इन दबे–कुचले शोषित वर्ग के साथ अपनी रचनाओं के माध्यम से सक्रिय भागीदारी और सहानुभूति भी निभायी। समाज और राजनीति के परस्पर आधारित संबंधों की व्याख्या करते हुए उन्होंने साहित्य को ऐसी सच्चाई की मशाल के रूप में प्रस्तुत किया जिसके प्रकाश में राजनीति का सम्यक् उत्थान हो सके।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की यवनिका के पीछे से चलाई गई अपनी दामनकारी नीति में जब अंग्रेज विफल हो गये तो वे अपने क्रूर और सचेत रूप में बेहिचक सामने आ गये थे। अंग्रेजों की आर्थिक नीति की समीक्षा करते हुए गोविंद रानाडे आदि विभिन्न नेताओं के साथ–साथ भारतेंदु जी ने भी लिखा है ''पै धन विदेश चलि जात इहै अति रूवारी।'' अस्तु अंग्रेजों ने सुधारों के नाम पर तरह–तरह के छल–छंद अपना कर आम जन को लूटना शुरू किया। अंग्रेजों द्वारा रचे गये इस जादू का पर्दाफाश करने में उपन्यास सम्राट प्रेमचंद जी ने विशिष्ट भूमिका निभाई। प्रेमचंद जी ब्रिटिश हुकूमत के इस उपनिवेशवादी आर्थिक पक्ष के साथ–साथ उसके सांस्कृतिक पक्ष से भी अत्यधिक आहत थे। उनके अनुसार यह भारतीयों के दिमाग का उपनिवेशीकरण था। अंग्रेजों की इस लूट के पिरामिड तंत्र विश्लेषण करते हुए उनका विचार था कि इसमें शीर्ष पर ब्रिटिश हुकूमत थी, उसके नीचे जमींदार और सामंत वर्ग और सबसे नीचे दबा–कुचला–शोषित किसान और मजदूर वर्ग था। अर्थात् भारत वर्ष की ही आम जनता जिसमें किसान और मजदूर शामिल थे उनका बेरहमी से शोषण भारत के ही सामंत वर्ग, जमींदार और कथित उच्च वर्ग के लोग कर रहे थे और इस कथित उच्चवर्ग के लोगों पर विदेश से आए अंग्रेज शासन कर रहे थे। अंततः पिस तो भारत की मासूम जनता ही रही थी।

प्रेमचंद जी इसी आमजन से अपना संवाद अपनी कथा–कहानियों के साथ–साथ लेखों के माध्यम से भी बना रहे थे और उन्हें, कुछ करने के लिये जगा रहे थे। इसी कारण उन्होंने 'हंस' और 'जागरण' जैसी पत्रिकाओं का संपादकत्व किया और 'ज़माना', 'आज़ाद' आदि पत्रों में निरंतर और नियमित रूप से कॉलम और लेख लिखने का भी कार्य किया। उनके 'सोज़े वतन' कहानी संग्रह को हम बिल्कुल नहीं भुला सकते जिसकी प्रतियों को अंग्रेजों ने जब्त कर लिया था और इस पर (बैन) निषेधाज्ञा भी लगा दी थी। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में निबंध और समीक्षाएँ छपवाते रहे। उर्दू पत्रिकाओं के लिए ''नवाब राय'' छद्म नाम से लेखन करते थे। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रेमचंद जी न केवल हिंदी, संस्कृत वरन् उर्दू, फ़ारसी और अंग्रेजी भाषाओं के भी विद्वान थे। इन सभी भाषाओं में दक्ष होने के कारण उनका दृष्टिकोण अपार विस्तार लिए हुए था। हिंदुस्तानी–फारसी परंपरा, अंग्रेजी शिक्षा की परंपरा और संस्कृत और हिंदूवादी तत्वों की सुदृढ़ धार्मिक परंपरा के साथ–साथ लोकभाषा हिंदी की परंपराओं के सम्मिश्रण से उनके व्यक्तित्त्व का निर्माण हुआ था।

मुंशी प्रेमचंद जी जिनका वास्तविक नाम धनपत राय था, ने अध्यापक के रूप में अपनी सरकारी नौकरी (सन् 1900) से जीवनयापन प्रारंभ किया था। बाद में वह स्कूल इंस्पेक्टर के पद तक पहुँचे। सरकारी नौकरी मात्र उनका जीविकोपार्जन का माध्यम था। वस्तुतः उनका हृदय तो शोषित–पीड़ित आम जनता के उत्थान की बातों में लगा हुआ था और इसके लिए उन्होंने अपनी लेखनी को हथियार बनाया। इसीलिये वे 'कलम का सिपाही' कहलाये। 'ज़माना' नामक पत्रिका के दया नारायण निगम जी के लिए प्रेमचंद जी निरंतर लिखते रहे और निगम जी ने भी उन्हें पत्रकारिता से एक नियमित धनराशि प्रदान करने का आश्वासन दिया। प्रेमचंद जी के संपूर्ण पत्रकारिता जीवन के दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहला भाग वह जब वह सरकारी नौकरी करते हुए विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में लेख लिखकर जन–जागरण का कार्य कर रहे थे और दूसरा भाग वह जब उन्होंने स्वेच्छा से नौकरी से त्याग–पत्र देकर प्रेस खोला और 'हंस' तथा 'जागरण' नामक मासिक पत्र निकालने आरंभ किये। प्रेमचंद के सारे मीडिया लेखन को अमृत राय ने विविध प्रसंग खंड 1, 2 और 3 में संकलित किया है। हालांकि यह उतनी ही सामग्री है जितनी प्राप्त हो सकी। लगभग 1600 पृष्ठों की यह सामग्री संकलित है। विविध प्रसंग के पहले खंड में अधिकांश लेख उर्दू के प्रसिद्ध पत्र जमाना से लिए गए जिससे मुंशी जी का आजीवन बहुत आत्मीय संबंध रहा। अमृत राय जी लिखते हैं– ''मुंशी जी ने जमाना के अलावा और भी अनेक उर्दू पत्रों में जैसे मौलाना मोहम्मद अली के 'हमदर्द' और इम्तियाज अली ताज के 'कहकशा', 'जमाना' ऑफिस से ही निकलने वाले साप्ताहिक 'आजाद' और 'चकबस्त' के मासिक पत्र 'सुबह–ए–उम्मीद' में काफी नियमित रूप से लिखा। जमाना में मुंशी जी ने 'रफ्तारे जमाना' के नाम से बहुत अर्से तक एक स्थाई स्तंभ लिखा।'' इसके अलावा विविध प्रसंग खंड 1 में संकलित पहला लेख ओलिवर क्रामवेल पर 'आवाज–एक–खल्क' बनारस की पत्रिका में क्रमशः 1 मई 1903 से 24 सितंबर 1903 तक प्रकाशित हुआ। इसी के साथ ही देसी चीजों का प्रचार कैसे बढ़ सकता है' 16 नवंबर 1905 को प्रकाशित हुआ। इस तरह से पहले खंड में संकलित अंतिम लेख जमाना पत्रिका में फरवरी 1919 में 'पुराना जमाना–नया जमाना' नाम से प्रकाशित हुआ।

सरकारी नौकरी में रहते हुए प्रेमचंद जी का स्थानांतरण विभिन्न क्षेत्रों में होता रहा था और कभी–कभी तो साहित्य की दृष्टि से बीहड़ जगहों में भी स्थानांतरण हुआ जैसे महोबा और बस्ती आदि। कहना न होगा कि एक साहित्य–प्रेमी और देश–दुनिया में हो रही हलचलों से स्वयं को नित्य अपडेट रखने वाले पत्रकारिता प्रेमी प्रेमचंद जी के लिए यह स्थिति बड़ी शोचनीय थी पर वे अपनी धुन के पक्के थे। अतः एक अखबार के भरोसे न रहकर वे अपने क्षेत्र में किसी न किसी क्लब या वाचनालय की खोज करके, वहाँ तक नित्य जाकर अपनी मानसिक क्षुधा को शांत करते ही थे। अमृत राय जी ने 'कलम का सिपाही' में लिखा है– ''ऐसे आदमी के लिए यह पूरी सजा है कि उसके महोबे और बस्ती जैसी बीहड़ जगाहों में पटका जाए और दूर–दूर देहातों में भटकना पड़े जहां डाक की भी सुविधा नहीं है। न अखबार ही पढ़ने को मिलते हैं और ना ऐसी संगत ही मिलती है कि बातचीत करके वह कुछ पा सकें। और भी खलने की वजह यह है कि वह रफ्तारे ज़माना–जैसा कॉलम लिखते रहना चाहता है जो कि फिलहाल छूट गया है। महज़ किस्सागो बनने से उनकी तबीयत नहीं भरती, वह अखबारनवीस भी बनाना चाहता है।''

यों तो प्रेमचंद जी कथा व उपन्यास आदि लगातार लिखते रहे थे परंतु समाचार–पत्रों में लगातार न लिख पाने की बेचैनी महोबा से श्रीनिवास जी को लिखे गए उनके पत्र की इन पंक्तियों में स्पष्ट रूप से दर्शनीय है– ''जी चाहता है नए–नए वाक्यात पर कुछ नोटिस लिखा करूँ, मगर वाक्यात का इल्म मुझे उस वक्त होता है जब वह अखबारात में निकल चुकते हैं और उनके देरे–अज़–वक्त हो जाने का खौफ रहता है।''

उपरलिखित पत्राचार के वार्तालाप से यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद जी लेखन और पत्रकारिता को पूर्णकालिक सेवा के रूप में अपनाने के पक्षधर थे। यहाँ तक कि सरकारी नौकरी में रहते हुए और विपरीत परिस्थितियों में भी (स्वास्थ्य अथवा नौकरी की) वे सतत पत्रों में लिखते रहे। लेखन के संदर्भ में उनके लिए कोई भी विषय त्याज्य नहीं था चाहे वो धर्म हो, समाज हो, छुआछूत हो, राजनीति हो, विदेश नीति हो या अन्य कुछ। सभी विषयों पर उन्मुक्त रूप से अपने विचार व्यक्त करने के कारण वे किसी धर्म, संप्रदाय, पार्टी, संगठन या विचारधारा में पूर्ण रूप से शामिल होने में असमर्थ थे। उनका जन्म भले ही सनातम धर्म में हुआ हो पर वैचारिक रूप से

वे आर्य समाज से प्रभावित थे। उनकी शिक्षा जो फारसी में हुई थी उसका भी उन पर पर्याप्त प्रभाव था और इन सबके बाद भी सनातन धर्म से उनका प्रेम कभी कम नहीं हुआ। आमूल क्रांति की बात करने पर भी अहिंसा के समर्थक थे। एक ओर जहाँ वो गांधी जी के विचारों से प्रभावित थे वहीं वे क्रांतिकारी खुदीराम बोस के बलिदान से भी प्रभावित थे। इस परिप्रेक्ष्य में इस यदि उनके पत्रकार रूप का विश्लेषण करें तो वे केवल सच के साथ खड़े दीखते हैं। उन पर या उनके लेखन पर सामाजिक धार्मिक भावना या वैचारिक आग्रह का कोई दबाव स्वीकार नहीं करते थे। उनकी दृष्टि निरपेक्ष भाव से समस्या का विश्लेषण करती थी।

प्रेमचंद जी के सकारात्मक दृष्टिकोण के संदर्भ में 'प्रताप' के संपादक बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जी लिखते हैं– ''एक बार वे (प्रेमचंद) प्रताप कार्यालय पधारे। मैं उन दिनों प्रताप का संपादन करता था। मेरे एक उप–संपादक किंचित विवादी मनोभावना के थे। बातचीत में हिंदू–मुस्लिम प्रश्न उठाया। मेरे उप–संपादक महोदय आवेश में आकर बोले– 'इस सांप्रदायिकता को रोकने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। हमें ईंट का जवाब पत्थर से देना होगा। तभी काम चलेगा।' प्रेमचंद जी मुस्कुराते हुए सुनते रहे। जब इन महाशय की द्वेषमयी वाणी रूकी तो वे अत्यंत साधारण स्वर में बोले– 'अरे भाई, इस समय मुसलमानों का मानस रोगयुक्त है। पागलों के साथ हम भी पागल बन जाएँ तो कैसे काम चलेगा। ये महाशय बल खाकर पूछ बैठे, क्यों साहब अगर पागल हमारे सामने पेशाब करने लगे तो हम क्या करे। प्रेमचंद जी ने शांति से कहा जरा दूर हट कर खड़े हो जाओ।– और अगर वहां भी आकर वह यही हरकत करें तो?– जरा और दूर हट जाओ। मगर वह हजरत थे हुज्जती, इतने पर भी ना माने। बोले वहाँ भी आकर यह वही हरकत करे तब? मुंशी जी ने कहा, ''यह कैसे हो सकता है? वह भलामानस कोई मशक थोड़े ही बाँधे है जो यहाँ वहाँ सब जग मूतता ही जाएगा।''

कहने का तात्पर्य यह है कि वे विदेशी अंग्रेजों के साथ–साथ भारतीय बुद्धिजीवियों को भी सही वक्त पर सटीक उत्तर सकारात्मकता से देने में सक्षम थे और उनका यही गुण उनके लेखन में भी परिलक्षित होता है।

'स्वदेश का संदेश' नामक संपादकीय में प्रेमचंद लिखते हैं कि ''स्वदेश के लिए सचमुच यह संतोष और सौभाग्य की बात है कि उसका जन्म एक नवीन युग में हो रहा है। ऐसे नवीन और शुभ युग में जो अपने सच्चे सिद्धान्तों के बल पर निकटवर्ती भविष्य में सारे संसार से अपनी सत्ता और महत्ता आप मनवा लेगा। परंतु अभी इस नवीन और शुभ योग का प्रकाश होना बाकी है, तो भी हम इस युग का हृदय से स्वागत करते हैं।''

अतः हम कह सकते हैं कि मुंशी प्रेमचंद जी की यह धारणा थी कि अब एक ऐसा भविष्य हमारे सामने शीघ्र उपस्थित होने वाला है जब राष्ट्रों के साथ पशुवत् व्यवहार नहीं होगा वरन् प्रत्येक जाति अपने भाग्य का स्वयं निर्णय करने में समर्थ और स्वतंत्र होगी। कोई राष्ट्र या जाति स्वेच्छा से किसी राष्ट्र में विलय होने का अथवा स्वशासन के लिये निर्णय लेने हेतु मुक्त होगा। इसीलिये वह उपर्युक्त लेख में आगे लिखते हैं– ''अब भविष्य में राष्ट्रों के साथ वस्तु या पशुओं के समान व्यवहार नहीं किया जाएगा। प्रत्येक जाति को इस बात का अधिकार होगा कि वह अपने भाग्य का आप निर्णय करे। वह जिस साम्राज्य के अधीन रहना चाहे रहे कि उसकी इच्छा हो तो स्वयं अपना राज्य शासन आप करे।'' लेख में आगे वे लिखते हैं कि ''हिंदुस्तान का उद्धार हिंदुस्तान की जनता पर निर्भर है। जनता में अपनी योग्यता के अनुसार या भाव पैदा करना प्रत्येक स्वदेशवासी का परम धर्म है। स्वदेश तुम्हें संदेश दे रहा है कि तुम भी मनुष्य हो तुमको भी यहाँ समान अधिकार प्राप्त है।

कह सकते हैं कि इस इस प्रकार के लेखों से प्रेमचंद जी जहाँ जनता जर्नादन से संवाद करते थे वहीं उनकी दबी इच्छाओं को सकारात्मक आकार देकर जनता के मनोबल को बढ़ाने का भी कार्य कर रहे थे।''

प्रेमचंद जी के लिए यह समाचार–पत्रों में लेखन जनता के हितों की रक्षा का और सत्ता की कटु आलोचना का सशक्त माध्यम था। इसके लिये उन्होंने परिणामों की कभी भी चिंता न करते हुए बड़ी निडरता से जनता का पक्ष सामने रखा। निर्बाध लेखन में व्यवधान उपस्थित होने पर उन्होनें अपने सरकारी नौकरी छोड़कर पूर्णकालिक लेखन की ओर कदम बढ़ाये और 'हंस' पत्रिका के प्रकाशन और संपादन में जोर–शोर से लग गये। उन्होंने इस पत्रिका का संपादन अपनी मृत्युपर्यंत (लगभग साढ़े छह वर्षों तक) किया। पत्रकारिता में साहस, निडरता और निष्पक्षता के उदाहरण स्वरूप उनके एक लेख (सन् 1933) की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं– ''देश राष्ट्र बनना चाहता था और पंथवाद में ढकेल दिया गया।''

अंग्रेजी सत्ता की तर्ज पर आज भी भारत में न जाने कितनी जाँच कमेटियाँ न जाने कितने मुद्दों पर बिठाई गई हैं और यह क्रम जारी है। प्रेमचंद जी ने ब्रिटिश हुकूमत के समय ही इसे लोकतंत्र मानने से मना करते हुए इनका भंडाफोड़ किया। वे अधिनियमों के माध्यम से लोकतंत्र का डंका पीटने वाले ब्रिटिश सत्ता के छद्म का पुरजोर विरोध करते हैं और जाँच के नाम पर कमेटी बिठाने की परंपरा पर कुठाराघात करते हुए 'हंस' पत्रिका के सन् 1931 में लिखे गये एक लेख में लिखते हैं– ''कमेटी और तहकीकातों से असली बात को टालते रहना राजनीति की पुरानी चाल है। यहां किसी बात की शिकायत पैदा हुई और उस शिकायत ने जोर पकड़ा के फौरन तहकीकात की कमेटी बना दी गई। शिकायत करने वालों में जिनकी आवाज सबसे ऊंची थी उन्हें उस तहकीकात कमेटी में शरीक कर .लिया गया।''

आज भी भारत इस कुप्रथा से पूर्णतः छुटकारा नहीं पा सका है और आज की पत्रकारिता में इस बात पर उतनी ही निर्भीकता से अपने विचार रखने वाले पत्रों और कलमकारों की गणना संभवतः उंगलियों पर हो सकती है।

प्रेमचंद जी लेखन के संदर्भ में पूर्ण सचेत थे इसलिये वे अमर्यादित व स्तरहीन टिप्पणी और असमाजिक व्यवहार के विरोध में भी स्पष्ट लिखते थे। विषयवस्तु हो अथवा भाषा वह मर्यादाविहीन कदापि नहीं होनी चाहिये, इस बात का वे पूरा ध्यान रखते थे। समाज में व्यवहृत गालियों पर वे भारतीय समाज की पर्याप्त खबर लेते हुए 'गालियों पर' शीर्षक लेख में एक अखबार की भी अच्छी खबर लेते हैं। अखबार में मोटे अक्षरों में होली के अवसर पर छाया गया था– ''आई होली आई होली, हमने अपनी धोती खोली।''

इस शीर्षक पर ही वे व्यंग करते हुए लिखते हैं– ''यह इस जिंदादिल अख़बार की जिंदादिली है। वह सभ्य और सुसंस्कति रुचि का समर्थक समझा जाता है।''

हम सभी को इस बात को मानने पर कोई आपत्ति नहीं होगी कि आज हमारा मीडिया चाहे वो चलचित्र का हो, टी0वी0 का हो या फिर पत्र–पत्रिकाओं का हो, न जाने कितनी अमर्यादित व स्तरहीन भाषा का प्रयोग करके विषय–वस्तु को प्रदर्शित कर रहा है पर इस विषय पर प्रेमचंद जी जैसी बेबाक टिप्पणी आज की पत्रकारिता में नहीं देखने को मिलती है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारत में लोकतंत्र को बनाये रखने के लिये इन चार स्तंभों को निर्मित किया गया – 1. न्याय पालिका 2. कार्य पालिका, 3. विधायिका, 4. समाचार माध्यम या पत्रकारिता। इस चौथे स्तंभ का कार्य सबसे जिम्मेदारी वाला था। अर्थात् शेष तीनों के काम पर निगाह रखना और सही व निष्पक्ष सूचनायें प्रसारित करना। इस चौथे और महत्त्वपूर्ण स्तंभ की मजबूत नींव व परिदृश्य का सुस्पष्ट स्वरूप प्रेमचंद जी ने आज से लगभग 100 वर्षों पूर्व ही खींच दिया था जबकि उस समय भारत में लोकतंत्र तो कहीं था ही नहीं। उन्होंने पत्रकारिता का निर्भीक और स्पष्ट रूप अपने लेखन के माध्यम से इस तरह सामने रखा कि ऐसी आवाज़ जो संदेह रहित होकर सच को सच और झूठ को झूठ कह सके, जो शोषितों और पीड़ितो पर हुए अन्याय और दमन के विरूद्ध बुलंद हो सके, पर खेद है कि आज का मीडिया और पत्रकारिता प्रेमचंद जी के इन मापदंडों पर पूर्णतः खरे नहीं उतर पा रहे हैं तो

आज जरूरत है ऐसे मीडिया की, ऐसी पत्रकारिता की जो संवेदनशील स्थिति में समाज की अखंडता को बनाये रखने व तर्कहीन सूचनाओं को समाज में फैलने से रोकने के लिये तत्पर हो, जो प्रेमचंद जी जैसे बड़े पत्रकारों से सीख लेकर पत्रकारिता के महत्त्व को पुनः प्रतिष्ठित करे। एक ऐसी आवाज़ बने जो निर्भय हो, स्वतंत्र हो और धर्म, जाति, सत्ता अथवा बाजार जैसे सभी दबावों से मुक्त हो। पत्रकारिता ऐसी हो जो समाज में फैल रही वैमनस्यता को दूर करके – ''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।।'' की भावना को समाज में स्थापित करने में तत्पर हो।

संदर्भ

1. राय अमृत–विविध प्रसंग खंड–2, पृष्ठ–538
2. राय अमृत–विविध प्रसंग खंड–1, पृष्ठ–6
3. राय अमृत–कम का सिपाही, पृष्ठ–123
4. वही, पृष्ठ–121
5. वही, पृष्ठ–122
6. वही, पृष्ठ–273
7. वही, पृष्ठ–274